वीर संवत २४९२, ज्येष्ठ कृष्ण १४, शुक्रवार, दिनाङ्क १७-०६-१९६६
गाथा २६ से २८ प्रवचन नं. ११

यह योगसार चलता है। २६ वीं गाथा। योगसार अर्थात् इस आत्मा का स्वभाव शुद्ध चैतन्यमय अनन्त गुण का पिण्ड है, उसमें एकाग्र होकर उसका ध्यान करना – यह मोक्ष के मार्ग का सार है। योग अर्थात् आत्मा का स्वरूप जो शुद्ध चैतन्य है, उसमें सन्मुख होकर एकाग्रता से आत्मा का ध्यान अथवा आत्मा के स्वभावसन्मुख का व्यापार (होना), वही सार और मोक्ष का कारण है। कहो, समझ में आया कुछ? इससे कहते है –

सुद्ध सचेयणु बुद्धु जिणु, केवल-णाण-सहाउ।
सो अप्पा अणुदिणु मुणहु, जइ चाहहु सिव-लाहु॥२६॥

जो कोई आत्मा के पूर्णानन्द पूर्ण आनन्दरूपी अतीन्द्रिय आनन्द की दशा पूर्ण रूपी मुक्ति के लाभ को चाहता हो तो उसकी प्राप्ति – शिव लाभ, पूर्ण कल्याणमूर्ति आत्मा की निर्मल पर्याय – ऐसा मुक्तभाव (यदि) चाहता हो तो **जइ सिवलाहु चहद** तो शुद्ध **अप्पा अणुदिणु मुणहु।** सब विशेषण कहेंगे। यह आत्मा शुद्ध है, अत्यन्त वीतराग है, निर्दोष है, पूर्ण पवित्र परमात्मा है – ऐसा इसे आत्मा की ओर का प्रति दिन – हमेशा **मुणहु** आत्मा का अनुभव करना। कहो, इसमें समझ में आया? शुद्ध है – ऐसा अनुभव करना। इस मोक्ष के लाभ के इच्छुक को यह काम है। कहो, समझ में आया?

मुमुक्षु – इसमें लाभ क्या होता है?

उत्तर – यह लाभ है न यह? लाभ सवाया कहा न? **सिवलाहु** – निरूपद्रव पूर्ण कल्याणमूर्ति आत्मा की पर्याय, आत्मा की शुद्ध परिपूर्ण प्रगट पर्याय का नाम मुक्ति (है)। ऐसे मुक्ति के लाभ को चाहता हो तो शुद्ध भगवान पूर्ण शुद्ध, पूर्ण शुद्ध वीतराग निर्दोश

स्वभाव है, उसका इसे अनुभव करना। इस शिवलाभ का यह हेतु है, दूसरा कोई हेतु नहीं। यह तो सार कहते हैं न ? सार... समयसार, प्रवचनसार, नियमसार, योगसार, गोम्मटसार – सब सार है। आहा...हा... !

यह तो परमार्थ से तत्त्व क्या करने योग्य है ? मोक्षार्थी को क्या करने योग्य है ? और किस कर्तव्य से मोक्ष की प्राप्ति होती है ? (– उसकी बात है)। इस शुद्ध भगवान पूर्ण शुद्ध चैतन्य का अन्तर ध्यान करना, अनुभव करना, उसका अनुसरण करके अन्दर स्थिर होना – यह एक ही मुक्ति का उपाय है। कहो, समझ में आया ?

सच्चेयणु यह सचेतन ज्ञानमूर्ति है। यह आत्मा तो ज्ञानचेतनामय है। जिसमें पुण्य -पाप का करना – ऐसी कर्मचेतना और हर्ष-शोक का भोगना – ऐसी कर्मफलचेतना, वह वस्तु-स्वभाव में नहीं है; वस्तु तो चेतनमय है। यह चेतन, कही और ज्ञानचेतना को वेदे – ऐसा इसका स्वरूप है। समझ में आया ? यह ज्ञान को वेदे, ज्ञान का अनुभव करे, ज्ञान के आनन्द के स्वाद को ले – ऐसा यह आत्मा है। यह पुण्य-पाप के स्वाद को ले या हर्ष-शोक के अनुभव को ले – ऐसा आत्मा नहीं है। आहा...हा... ! समझ में आया ? अर्थात् ? यह तो चेतनामय वस्तु है, पर का कुछ करे या पर से ले – ऐसा उसका स्वरूप नहीं है। इसी तरह यह राग को करे या वेदे – ऐसा उसका स्वरूप नहीं है, आहा...हा... ! समझ में आया ? यह तो सचेतन जागृतस्वरूप, चेतनेवाला... चेतनेवाला... चेतनेवाला जागृत (स्वरूप है)। अग्नि को चेतते हैं न ? चेताओ अग्नि – (ऐसा) नहीं कहते क्या ? चूल्हे में पड़ी हो तो। यह तो इसका चेतने का स्वभाव ही है। आनन्द का वेदन करना, ज्ञान का वेदन करना, प्रत्यक्ष ज्ञान का वेदन करना – यही इसका – आत्मा का स्वरूप है। आहा...हा... ! समझ में आया ? यह तो परमार्थमार्ग की बात चलती है न ?

मुमुक्षु – मार्ग एक है न !

उत्तर – परन्तु मार्ग दो हो कहाँ से ? दूसरा है नहीं न। 'एक होय तीन काल में, परमार्थ का पंथ।'

भगवान आत्मा जो शुद्ध-बुद्ध स्वरूप है, उसमें चैतन्यमूर्ति, चेतना को वेदे, चेतना

को वेदे, चेतना को करे – ऐसा चैतन्यस्वरूप है। राग को करे या हर्ष को भोगे – यह वस्तुस्वरूप ही नहीं है। संसार के भाव को करे या संसारभाव को – हर्ष से वेदे – यह वस्तु, यह आत्मा ही नहीं है। समझ में आया? अतीन्द्रिय भगवान आत्मा.... उसे आत्मा कहते हैं कि जिसमें अकेली चेतना भरी है। वह तो चेतने का, जानने का, देखने का, वेदने का, अनुभव करने का काम करे – ऐसा यह आत्मा है। ऐसे आत्मा को तू **मुण** – जान। राग को, अमुक को करे, वह आत्मा नहीं; वह तो अनात्मा है। समझ में आया?

व्यवहार के रत्नत्रय के विकल्प उठें या करे, या वेदे, वह आत्मा नहीं, वह आत्मा नहीं। आत्मा ज्ञानमूर्ति प्रभु, वह ज्ञान में जमकर, ज्ञान का अनुभव करे, ज्ञान का वेदन करे, ज्ञान में ज्ञान की एकाग्रतापने का अनुभव करे – ऐसा यह आत्मा है। कहो, समझ में आया?

मुमुक्षु – इसी प्रकार सुना करें – ऐसा लगता है।

उत्तर – ऐसा? आहा...हा...! यहाँ तो कहते हैं कि बोले, वह आत्मा नहीं।

मुमुक्षु – सुने वह?

उत्तर – सुने वह आत्मा नहीं। आहा...हा...! अरे...! भगवान! विकल्प से सुने, वह आत्मा नहीं। समझ में आया?

भगवान आत्मा चेतनस्वरूप (है), वह तो चेतने का काम, वेदने का काम, जानने का काम करे, उसे आत्मा कहते हैं और उस आत्मा को **मुण** – अनुभव... उस आत्मा का अनुभव कर, वह शिवलाभ का हेतु है। पैसे के लाभ का और धूल के लाभ का दुनिया प्रयत्न करती है। निरुपद्रव कल्याणमूर्ति मुक्तपर्याय के लाभ के लिये यह एक ही उपाय है; दूसरा उपाय नहीं। आहा...हा...! बहुत सार-सार भरा है।

बुद्ध वह तो बुद्ध है, बुद्धदेव है, सत्यबुद्ध है, वह सच्चा बुद्ध है। समझ में आया? यह आत्मा भगवान सत्यबुद्ध है, यह इसका सत्यपना, इसका बुद्धपना जानना। वह स्वयं देव है, सत्यबुद्ध स्वयं देव है। तू ऐसे देव को जानकर अनुभव (कर)। आहा...हा...! समझ में आया? ऐसा देव है, इसलिए तू जानकर दूसरे को कुछ कहना – ऐसा यह आत्मा

है ही नहीं – ऐसा कहते हैं। आहा...हा...! ऐसा आत्मा जानकर दूसरे को कहना, दूसरे को समझाना, बहुतों को लाभ होगा – यह आत्मा ऐसा है ही नहीं, यह कहते हैं। आहा...हा...!

मुमुक्षु – प्रभावना होती है।

उत्तर – प्रभावना किसकी? कहाँ होती होगी?

श्रोता – अन्तर में।

समझ में आया? यह ज्ञान, और अन्तर **बुद्ध** सत्यबुद्ध भगवान। भगवान बुद्धदेव स्वयं सत्य है, यह बुद्धदेव ही सत्य है। 'बुद्धं शरणं' आता नहीं इसमें? आता है या नहीं? 'बौद्धं देवं शरणामि, बुद्धम गच्छामि' ऐसा कुछ शब्द आता है। लड़के बोलते थे, नहीं? अकलंक-निकलंक नाटक में बोलते थे। अभी किसी ने किया था या नहीं? पहले एक बार धीरूभाई ने नहीं किया था? 'बौद्धं देवं शरणामि' वे कहते 'अरिहंतं शरणामि, अरिहंत शरणामि' 'बुद्धं शरणं गच्छामि'।

यहाँ कहते हैं कि बौद्धं देवं शरणम् गच्छामि। यह मैं बौद्धदेव हूँ, भाई! आहा...हा...! सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव फरमाते हैं कि भाई! तू तो सत्यबुद्ध है न! इसमें सत्यबुद्ध का पूरा पिण्ड है, सच्चा बुद्ध है, सच्चा बुद्धपना, सच्चा देवपना, वह तू है, उसे जानकर अनुभव कर, यही मोक्ष के लाभ का हेतु और कारण है। आहा...हा...! कहो, समझ में आया? भाई! दूसरे के प्रश्न के उत्तर दे, समाधान करे तो कितना कल्याण हो! ए...ई...! धूल भी नहीं होता, सुन न! वह कहाँ मोक्ष का मार्ग था? आहा...हा...! समझ में आया?

सत्यबुद्ध भगवान चिदानन्द की मूर्ति, ऐसा स्वभाव, उसका अनुभव कर, यही मुक्ति के लाभ का हेतु है। दूसरा कोई कारण है नहीं। आहा...हा...! यह स्थिर.... स्थिर भगवान है, उसमें स्थिर हो, बाकी कोई मोक्ष का मार्ग नहीं है। आहा...हा...! लोगों को कठिन (लगता है) ऐसा भी यह सब व्यवहार.... व्यवहार। अब सुन न! व्यवहार था कब उसमें? वह व्यवहार ही नहीं। समझ में आया? आहा...हा...! दूसरे से सुनना और दूसरे को सुनाना – ऐसा वस्तु के स्वरूप में नहीं है। ऐ... ई... निहालभाई!

यह तो सत्य का साहब बुद्धदेव परमात्मा स्वयं है। ऐसा आत्मा, उसे अन्तर्मुख होकर **मुणहु** – जान, अर्थात् अनुभव कर। समझ में आया?

मुमुक्षु – स्थिर में स्थिर हो, ऐसा तो आप ही समझा सकते हो।

उत्तर – वह स्थिर तत्त्व, स्थिर-स्थिर तत्त्व है। कल वहाँ नहीं आया था? अविचल आया था। दोपहर में आया था, दोपहर में आया था। अविचल रहने का स्थान भगवान है। वह उपशमरस और अकषाय शान्तरस और वीतरागता के रस से पिण्ड जमा हुआ वह आत्मतत्त्व है, वीतरागता के अकषाय रस से जमा हुआ पिण्ड है। उसमें विकल्प उठाना कि मैं दूसरों से समझूँ और दूसरों को समझाऊँ, यह वस्तु के स्वरूप में नहीं है। आहा...हा...! समझ में आया?

वाह...! **बुद्ध** यह भगवान बुद्ध है, सत्यबुद्ध है। स्वयं से स्वयं जाननेवाला है, अपना ज्ञान अपने से जाने और वेदन करे – ऐसा यह आत्मा है, दूसरे किसी पहलू से आत्मा की स्थिति को माने तो वह आत्मा वैसा नहीं है। समझ में आया? जानपने के विशेष बोध द्वारा दूसरे को समझावे तो वह अधिक है, तो वह आत्मा का स्वरूप ऐसा है ही नहीं। क्या कहा, समझ में आया? जानपने के विशेष बोल से दूसरे का समाधान करे – ऐसा आत्मा है, यह आत्मा ऐसा है ही नहीं। ए... छोटाभाई! आहा...हा...! भगवान आत्मा सत्य साहब प्रभु! अकेला बुद्ध पिण्ड प्रभु है। उसमें इस विकल्प का अवकाश कहाँ है? वह जाना हुआ तत्त्व है, उसे कहूँ – ऐसा विकल्प, वस्तु का स्वरूप कहाँ है? ऐसा आत्मा ही नहीं है। ऐसा होवे तो सिद्ध भगवान बोलना चाहिए। समझ में आया? आहा...हा...!

जिणु वह स्वयं जिन है, देव-जिनदेव है। ओ...हो...हो...! सच्चा जिन यह भगवान आत्मा है। समझ में आया? वे समवसरण में-लक्ष्मी में विराजमान हैं, वे तो तेरे लिए व्यवहार जिन हैं। तेरे लिए तेरा जिन वीतरागी बिम्ब वह स्वयं जिन है, परमेश्वर है। उनका जिन भी अन्दर में परमात्मस्वरूप जिन है। समवसरण और वह सब जिन-बिन है नहीं। समझ में आया? वाणी-ध्वनि निकले और समवसरण में इन्द्र एकत्रित हों, वह जिनपना नहीं है। आहा...हा...! उन्हें और आत्मा को कोई सम्बन्ध नहीं है। समझ में आया? जिन,

तू स्वयं सच्चा जिन है। रागादि कर्म शत्रु को हनन करनेवाला है। अर्थात् ? यह भी व्यवहार से है। वस्तु स्वरूप से वीतरागी बिम्ब भगवान है। उसे जानकर अनुभव कर, बस! समझ में आया ?

यह तो सारमार्ग है, अकेला मक्खनमार्ग है। आहा...हा... ! ऐसे आत्मा को जिनरूप से स्वीकार, वीतरागी बिम्ब आत्मा प्रभु स्वयं मैं हूँ, उसे तू अनुभव कर। उसमें कुछ भी राग, वाणी, वाँचन, लेना-देना, शरीर के पुण्यप्रकृति के फल, उसमें यदि कहीं अधिकाई लग गयी तो जिनस्वरूप को अधिकपने नहीं माना है। आहा...हा... ! समझ में आया ? भगवान जिनस्वरूप स्वयं ही है। अब, उस जिनस्वरूप के अतिरिक्त जितने बोल उठें, वे सब जिनस्वरूप नहीं हैं। अत: जिनस्वरूप की महिमा करनी है, उसके बदले उसके अतिरिक्त विकल्प, वाणी और जानपने का व्यवहार और उसकी महिमा व अधिकता स्वयं को ज्ञात हो जाये और या दूसरा ऐसा हो उसे इस प्रकार अधिकरूप माने तो वह भूल में पड़ा है। आहा...हा... ! समझ में आया ? यह तो **संसार विजयी जिनेन्द्र है....** देखो! अर्थ किया है, हाँ! संसार विजयी जिनेन्द्र है। वह तो विकल्प और उसके अभावस्वरूप जिनेन्द्र है। आहा...हा... ! अरे... ! शास्त्र के भानवाले भाव से भी वह मुक्त – ऐसा वह जिनेन्द्र है। समझ में आया ? ऐसा भगवान जिनेन्द्र प्रभु, उसका निर्विकल्प दृष्टि से ध्यान करना, उसे निर्विकल्प ज्ञान द्वारा ज्ञेय करना, यह उसे अन्दर में ऐसा वीतरागबिम्ब वह मैं हूँ, उसमें स्थिर होना, वह शिव लाभ का हेतु है। कहो, समझ में आया ? आहा...हा... !

भाई! एक व्यक्ति कहता था, अकेला तो कुत्ता भी पेट भरता है... आहा...हा... ! दूसरे का करें, समझावें, दूसरे को समझें, तब उसका लाभ और जैनशासन कहलाता है। अरे... ! सुन... सुन..., कहा भाई! तेरा नाम सुखसागर है, और यह विपरीतता कहाँ से लाया ? उसका नाम सुखसागर था। नहीं ? बहुत करके वहाँ है। बोर्ड लिखा है, बहुत वर्ष पहले हीराभाई के मकान में आये थे। लो, आत्मा... आत्मा... आत्मा का करना... यह तो कुत्ते भी पेट भरते हैं... आहा...हा... ! ऐसे-ऐसे मूर्ख वे कोई अलग होंगे ? दूसरे का करना है। यहाँ कहते हैं कि दूसरे का करने का विकल्प उठाना, वह आत्मा नहीं है। अब सुन न!

करने की तो कहाँ बात रही ? पर का कौन करे ? ए... निहालभाई ! यह कोई बात ! दूसरे का करना, वह 'सतरगच्छ' में है, नहीं ? बहुत करके उसमें है। हैं ? वह उस दिन तो ऐसा बोला था। मैंने कहा यह क्या कहता है यह ?

यहाँ तो कहते हैं भाई ! यह तो जिनस्वरूप भगवान आत्मा है। वह आत्मा, उसका लक्ष्य करके जिनस्वरूप में स्थिर होना, वीतरागी पर्याय से स्थिर हो, वह जैन, वह जिन के स्वरूप का आराधक है, और वह शिवलाभ का हेतु करनेवाला है। आहा...हा... ! समझ में आया ?

वह **केवलणाण सहाउ** वह तो सम्पूर्ण ज्ञान का धनी है। आहा...हा... ! पूर्ण निरावरण ज्ञान का पिण्ड है, स्वतः ज्ञान का पिण्ड है, जो ज्ञान पर से नहीं आता... पर को देता नहीं, पर से आता नहीं। समझ में आया ? ऐसा अकेला चैतन्य का पुञ्ज भगवान है। ज्ञान – निरावरण केवलज्ञान का स्वभाव ही उसका वह है। अकेला पूर्ण, अकेला पूर्ण, ज्ञान स्वभाव, वह भगवान है।

देखो ! राग तो नहीं, शरीर तो नहीं, अपूर्ण तो नहीं... समझ में आया ? यह तो पूर्ण आत्मा.... आत्मा ही उसे कहते हैं। चार ज्ञान का विकास, वह वास्तव में आत्मा नहीं है। कहो, आहा...हा... ! समझ में आया ? गणधर की पदवी, चौदह पूर्व रचे, बारह अंग की रचना की, कितनी अधिकता ! (तो कहते हैं) नहीं; तुझसे किसने कहा ? अकेला ज्ञान स्वभाव है, उसमें फिर यह रचना और यह विकल्प वस्तु में है कहाँ ? यहाँ तो प्रगट चार ज्ञान की पर्याय है, वह वास्तविक आत्मा नहीं है, वह वास्तविक नहीं है; व्यवहार आत्मा है। समझ में आया ? ऐसा **केवलणाण सहाउ सो अप्पा।** लो, वह आत्मा... उसे आत्मा कहते हैं। इसके अतिरिक्त कम-ज्यादा, विपरीत अन्दर में रखेगा, वह आत्मा को नहीं जानता है। समझ में आया ? आहा...हा... !

सो अप्पा अणुदिणु 'अणुदिणु' अर्थात् हमेशा... हमेशा, ऐसा। रात और दिन अर्थात् हमेशा, ऐसे आत्मा को (ध्या)। हमेशा क्यों ? किन्तु चौबीस घण्टे में किसी दिन कुछ तो किसी का करना.... किसी का करने के लिए.... बापू ! एक व्यक्ति कहता था, दो-तीन भव हमारे होवे तो दिक्कत नहीं है। (हमने) कहा दो-तीन नहीं एकदम

समानता के अनन्त होंगे। एक भी भव के भाव की भावना करता है, उसे अनन्त निगोद के भव उसके कपाल (गर्भ) में पड़े हैं। भले ही एक दो भव हों परन्तु हमें तो दुनिया का कल्याण (करना है)। यहाँ वह शब्द है न? जगत् का कल्याण करना... नहीं? यह ठीक है (ऐसा) कहते हैं। समझ में आया? कौन करे? जगत् का करे कौन? कल्याण करे कौन? विकल्प करे कौन? वस्तु में विकल्प नहीं है। समझ में आया? आया वह तो अनात्मस्वरूप नुकसान कारक है, उससे स्व को लाभ माने, वह आत्मा को जानता नहीं है। समझ में आया?

ऐसा **अप्पा अणुदिणु मुणहु** किसी समय में दूसरा आना नहीं चाहिए – ऐसा कहते हैं। ऐसा भगवान आत्मा अन्दर में निर्विकल्प श्रद्धा-ज्ञान और शान्ति से अनुभवना, बस! यही आत्मा का स्वरूप और मोक्ष के लाभ का हेतु है, बाकी सब बातें हैं। समझ में आया? वे आते हैं न, दश प्रकार के धर्म? रात्रि में क्षमा का विचार आया... त्याग धर्म नहीं आता? त्याग आवे, उसमें दूसरा लिखे, उसे पुस्तक देना, ऐसा देना... अरे...! भाई सुन न! यह तो विकल्प की बातें हैं। ए...ई... छोटाभाई! दश प्रकार के धर्म में आता है या नहीं? दूसरे को पुस्तक देना, दूसरे को यह देना, उसे शिक्षा देना, उसे यह देना, यह महा ज्ञान का आराधना है। अरे...! सुन न! यह तो विकल्प की बातें हैं। समझ में आया? यह तो पीछे अन्तर में ज्ञानानन्द की एकाग्रता की भावना की उग्रता वर्तती है, उसके निमित्त द्वारा बतलाया है। यह विकल्प द्वारा बतलाया है। देखो! इसे राग का त्याग वर्तता है, और यह त्याग (वर्तता है) – ऐसा करके अन्दर में स्थिरता क्या है, उसे बतलाया है। वह स्वयं चीज नहीं है, समझ में आया? आता है, शास्त्र में ऐसा कथन आता है, हाँ!

यह बात है, भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्यमूर्ति बुद्ध जिन अकेला पूर्ण ज्ञानस्वभाव है, उसका बारम्बार – हमेशा.... फिर बारम्बार अर्थात् एक बार और फिर... ऐसा बारम्बार नहीं। एक धारावाही ऐसे भगवान का अनुभव करना। आहा...हा...! बीच में विकल्प हो, उसे अनुमोदित नहीं करना कि यह मुझे हितकारी है। आहा...हा...! समझ में आया?

जइ पाहउ सिवलाहु लो! **जइ पाहउ सिवलाहु** शिव के लाभ को चाहता हो तो

यह है। निश्चय जिनराज तो तू है। भगवान समवसरण में विराजते हैं, वह आत्मा जिनराज है। वह समवसरण, जिनराज नहीं है; उनकी वाणी, जिनराज नहीं है; ॐध्वनि, जिनराज नहीं है; दिव्यध्वनि, जिनराज नहीं है; परमौदारिक शरीर, जिनराज नहीं है। जिनराज तो वीतराग का बिम्ब अन्दर स्थिर हो गया, वह जिनराज है। ए... देवानुप्रिया! यह २६ (गाथा पूरी) हुई, लो!

☆ ★ ☆

निर्मल आत्मा की भावना करके ही मोक्ष होगा

जाम ण भावहि जीव तुहुँ, णिम्मल अप्प-सहाउ।
ताम ण लब्भइ सिव-गमणु, जहिँ भावइ तहिँ जाउ॥२७॥

जब तक शुद्ध स्वरूप का, अनुभव करे न जीव।
जब तक प्राप्ति न मोक्ष की, रुचि तहँ जावे जीव॥

अन्वयार्थ – (जीव) हे जीव! **(जाम तुहुँ णिम्मल अप्प सहाउ ण भावइ)** जब तक तू निर्मल आत्मा के स्वभाव की भावना नहीं करता **(ताम सिवगमणु ण लब्भइ)** तब तक तू मोक्ष नहीं पा सकता **(जहिं भावहु तहिं जाउ)** जहाँ चाहें वहाँ तू जा।

☆ ★ ☆

२७। **निर्मल आत्मा की भावना करके ही मोक्ष होगा।** कठिन.... सार फिर से विशेष (लेते हैं)। भगवान आत्मा निर्मलानन्द प्रभु सचेत असंख्य प्रदेश में जागृत स्वभाव का पिण्ड, उसकी भावना। भावना शब्द से स्वरूप में एकाग्रता, निर्विकल्प एकाग्रता। देखो! यह भावना शब्द रखा है, हाँ! है न? **जहिं भावहु** ऐसा है न। चौथे पद में है, **भावहु** अर्थात् भावना करके मोक्ष जायेगा।

भगवान आत्मा... यह तो भावना का ग्रन्थ है, इसे पुनरुक्ति लागू नहीं पड़ती, इसे पुनर्भावना लागू पड़ती है। बारम्बार एकाग्रता... एकाग्रता.... एकाग्रता.... स्व सन्मुख की श्रद्धा, ज्ञान और रमणता, यह एक ही मोक्ष का मार्ग है। व्यवहार के विकल्प, मोक्ष का मार्ग नहीं हैं। आहा...हा...! शास्त्र की स्वाध्याय करने से निर्जरा होती है, यह होती है। अरे...

भगवान आत्मा की स्वाध्याय अन्तर में करने से निर्जरा होती है। आहा...हा... ! समझ में आया ? भगवान आत्मा एक ही शुद्ध चिदानन्द की मूर्ति अभेदस्वभाव की एकाग्रता करते ही मोक्ष होगा, दूसरे प्रकार से मोक्ष नहीं होगा। भ्रम के भुलावे में मत पड़ – ऐसा कहते हैं। आहा...हा... ! भ्रम के स्थान बहुत हैं। भ्रम के स्थान भटकने के बहुत और भ्रम को छोड़ने का स्थान एक भगवान आत्मा है। आहा...हा... ! समझ में आया ?

जाम ण भावहि जीव तुहुँ, णिम्मल अप्प-सहाउ।
ताम ण लब्भइ सिव-गमणु, जहिँ भावइ तहिँ जाउ॥२७॥

तुझे करना हो तो यह कर, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? **हे जीव! जाग तुहुं णिम्मल अप्प सहाउ ण भावहु** क्या कहते हैं ? **जब तक निर्मल आत्मा के स्वभाव की भावना नहीं करता....** लाख तेरे व्रत, नियम, पूजा, और भक्ति, और यह विकल्प शास्त्र के श्रवण व देने-लेने के विकल्प की जाल जहाँ तक करे, वहाँ तक आत्मा का मोक्षमार्ग नहीं है। समझ में आया ? **जब तक निर्मल आत्मा के स्वभाव की भावना नहीं करता....** इन सब विकल्पों की जालों को छोड़कर, भगवान पूर्णानन्द का स्वरूप अभेद चैतन्य में अनुभव न करे, तब तक **ताम सिवगमणु ण लब्भई – तब तक तू मोक्ष प्राप्त नहीं कर सकता।** मोक्ष में गमन नहीं करेगा – ऐसा कहते हैं। मोक्ष में गमन **ण लब्भई।** पूर्णानन्द की ओर तेरा गमन-परिणमन नहीं होगा। आहा...हा... ! बहुत बात की है, भाई !

बेचारे कितने ही लोग तो बाहर की प्रभावना के लिये जिन्दगी खो बैठते हैं, हैं ? हम करें और बहुतों को लाभ हो, बहुतों को लाभ होता है... धूल भी लाभ नहीं है, अब सुन न ! बाहर के लिये मर-पीट कर जिन्दगी खो जाता है। समझ में आया ? परन्तु **जाम ण भावहु जीव।** जहाँ तक भगवान स्वभाव का पिण्ड प्रभु, उसकी ओर की श्रद्धा ज्ञान और चारित्र की भावना की शुद्धता की निर्विकल्पता की एकता न करे... समझ में आया ?.... वहाँ तक मोक्ष नहीं प्राप्त कर सकता। यह लाख तेरे बाहर के विकल्प द्वारा, व्यवहार द्वारा मुक्ति नहीं प्राप्त कर सकता। समझ में आया ? यह सब तो स्थापित हो जाता है। ए...ई... बाबूभाई ! (लोग) चिल्लाते हैं, कहते हैं। भगवान तेरा स्वभाव ऐसा है न परन्तु.... आहा...हा... !

दिव्यध्वनि, वह जैनशासन नहीं। आहा...हा...! विकल्प उत्पन्न होता है, वह जैनशासन नहीं, पंच महाव्रत का परिणाम उत्पन्न होता है, वह जैनशासन नहीं। आहा...हा...! दूसरों को समझाने में रुकना, (उसका) विकल्प, वह जैनशासन नहीं। निहालभाई! कठिन मार्ग ऐसा... भाई! आहा...हा...! जहाँ अकेला स्थिर शान्त वीतरागी रस का तत्त्व आत्मा, उसमें ऐसे विकल्प को अवकाश कहाँ? और होवे तो वह शिवपंथ के कारण में कैसे शामिल है? शिवपंथ के गमन में, पंथ के गमन में तो शुद्ध भगवान आत्मा के ओर की अनुभव की दृष्टि, अनुभव ज्ञान, अनुभव की स्थिरता एक ही **सिवगमणु** – यह मोक्ष के पंथ का गमन और परिणमन है।

यह देखो न, छोटा ग्रन्थ है, लो! १०८ श्लोक, हैं। वे पूज्यपादस्वामी, लो न, इक्यावन श्लोक... क्या कहा यह? इष्टोपदेश। आहा...हा...! दिगम्बर सन्त, उनकी वाणी, सम्पूर्ण मोक्षमार्ग को खोल देती है। वीतरागी मुनि थे, वीतरागी मुनि... समझ में आया? भले नग्न शरीरादि था, उस वाणी और नग्न शरीर में हम नहीं हैं। वाणी और नग्न शरीर और विकल्प में हम नहीं हैं; हम जहाँ हैं, वहाँ वे नहीं हैं। समझ में आया?

ऐसा भगवान आत्मा... उसे कहते हैं कि जब तक निर्मलस्वभाव की, स्वभाव की एकाग्रता न करे और बाहर में विकल्प की जाल में घूमा करे, तब तक **सिवगमणु ण लब्भइ।** जहाँ तुझे भाव हो वहाँ जा। इस स्वभाव में मुक्ति चाहिए हो तो स्वभाव की ओर की एकता कर, वरना विकल्प में गया है और उससे लाभ मानता है, यह तो अनादि का पड़ा है। यह तू करता है, उसमें हमारे कहना क्या? **जहिं भावहु तहि जाउ** ओ...हो...हो...! **जहाँ चाहे वहाँ तू जा।** मोक्ष का लाभ चाहता हो तो इस स्वभाव की ओर एकाग्र हो। समझ में आया? यह सब प्रपञ्च के विकल्प की जाल छोड़ दे। भगवान आत्मा निर्विकल्प स्वरूप (विराजमान है, उसका) ध्यान कर, बस! एक ही उपाय है, आहा...हा...! कहो, समझ में आया?

वह बाहर मीठा कैसा लगता है? भले हमारे एक-दो भव बढ़ें.... समझे न! वह तो दो-तीन भव कहता था। यह तो ऐसा सुना कि भई! एकाध भव करना पड़े परन्तु जगत का कल्याण हो जाये तो भले आत्मा को एक दो भव हों, कोई बाधा नहीं। एक भव की भावना,

वह अनन्त भव की भावना है। भव करने का भाव तो राग है। आहा...हा...! समझ में आया? वह भावना दूसरे के कल्याण का निमित्त होगी। धूल भी नहीं होगी। मूढ़... मूढ़ फंस जायेगा, उलझ जायेगा, उलझ जायेगा, कहा। दुनिया को मीठा जहर जैसा लगे – ऐसा अच्छा... आहा...हा...! कितना परोपकारी लगता है यह! तुम्हारे लिये हमारे एक-दो भव करना पड़े तो भले करना पड़े परन्तु (हमारा) अवतार तुम्हारे लिये, हमें जन्म लेकर उद्धार करना है। आहा...हा...! अन्य को लगे कि आहा...हा...! वे मूढ़ जैसे होते हैं। भिखारी हों और दबैल का लड़का...आहा...हा...! अपने लिए अवतार लेकर भी उद्धार करने की भावना करते हैं, हाँ!

मुमुक्षु – अपना बड़ा हितकारी है।

उत्तर – नहीं, नहीं, वे मूर्ख तो ऐसा मानते हैं कि यह वास्तविक धर्मी है। वास्तविक लगता है, अपना भले ही चाहे जो हो, वह पोषाता है। समझ में आया? जिसे हमारी दरकार है... आहा...हा...! श्रीमद् ने एक जगह लिखा है न? कि अमुक ने ऐसा माना कि हमारा चाहे जैसा हो परन्तु जैनशासन और जैनधर्म का लाभ होना चाहिए... ऐसा नहीं होता कभी। ऐसा यहाँ तो कहते हैं। आहा...हा...! किसे लाभ होता है? होगा तो अन्दर में उसके कारण उसे लाभ होगा। तेरे कारण होगा? और तूने विकल्प उठाया, इसलिए उसे लाभ होगा? विकल्प उठाया, इसलिए उसे जरा भी लाभ है? आहा...हा...! समझ में आया?

कोई अज्ञानी व्यवहार धर्म में ही फँसे रहते हैं.... ऐसा कथन लिखा है, हाँ! कथन ठीक किया है। व्यवहार धर्म में ही सदा फँसे रहते हैं। यह पूजा, यह भक्ति, यह व्रत, यह समझाना, यह सुनना, पढ़ना, विचारना, चौबीस घण्टे संसार। अज्ञानी पण्डित का संसार शास्त्र (है।) उसे मानता है कि यह हम कुछ आगे जा रहे हैं, हम कुछ आगे जा रहे हैं। कहाँ आगे जाता है? धूल... समझ में आया? **व्यवहार धर्म में ही फँसे रहते हैं, निश्चय धर्म का लक्ष्य छोड़ देते हैं....** नीचे फिर अधिक लम्बा डाला है। समझ में आया? बहुत लम्बा किया है। ऐसा करना और वैसा करना, ऐसा करना और.... उसकी बात इसमें कहाँ है?

☆ ★ ☆

त्रिलोक पूज्य जिन आत्मा ही है

जो तइलोयहँ झेउ जिणु, सो अप्पा णिरु वुत्तु।
णिच्छय-णइँ एमइ भणिउ, एहउ जाणि णिभंतु॥२८॥

ध्यान योग्य त्रिलोक में, जिन सो आतम जान।
निश्चय से यह जो कहा, तामें भ्रान्ति न मान॥ २८॥

अन्वयार्थ - **(जो तइलोयंह झेउ जिणु)** जो तीन लोक के प्राणियों के द्वारा ध्यान करने योग्य जिन हैं **(सो अप्पा णिरू वुत्तु)** वह यह आत्मा ही निश्चय से कहा गया है **(णिच्छयणइ एमइ भणिउ)** निश्चयनय से ऐसा ही कहा है **(एहउ णिभंतु जाणि)** इस बात को सन्देह रहित जान।

☆ ★ ☆

अब, **त्रिलोक पूज्य जिन आत्मा ही है।** २८, तीन लोक में पूज्य होवे तो यह भगवान स्वयं ही है। अपने लिये अपना आत्मा ही पूज्य है, आहा...हा...!

जो तइलोयहँ झेउ जिणु, सो अप्पा णिरु वुत्तु।
णिच्छय-णइँ एमइ भणिउ, एहउ जाणि णिभंतु॥२८॥

आहा...हा...! **जो तीन लोक के प्राणियों द्वारा ध्यान करने योग्य जिन है....** यह भक्तों को ध्यान करने योग्य जिन है, वह तो भगवान आत्मा है। कहो, समझ में आया? परन्तु वह भगवान को पूजने का, मूर्ति पूजने का व्यवहार बीच में आता है न? आओ, वह कोई पूज्य परमार्थ से नहीं है; परमार्थ से पूज्य हो तो वहाँ से लक्ष्य हटकर अन्दर में लक्ष्य लाने की आवश्यकता नहीं पड़ती। आहा...हा...! वहीं का वहीं भगवान को और प्रतिमा को देखा करे। वहाँ से कल्याण है? वे अन्य कहते हैं, भगवान के दर्शन से निधत और निकाचित (कर्म का अभाव होता है)। भगवान की मूर्ति का दर्शन करे वह निधत, निकाचित तोड़े। अरे! ऐसा नहीं है। तीन लोक का नाथ पूज्य भगवान आत्मा है, उसके दर्शन से निधत और निकाचित कर्म का भुक्का उड़ जाता है – ऐसा भगवान आत्मा है।

परमेश्वर और उनकी मूर्ति को देखने से सम्यग्दर्शन नहीं होता, व्यवहार का कथन आता है, हाँ! कि उससे होता है। वह तो यहाँ से हो, तब बाह्य में समीप में निमित्त कौन (था) ? उसका ज्ञान कराया। आहा...हा... ! समझ में आया ?

तीन लोक के प्राणियों को ध्यान करने योग्य जिन है, वह आत्मा है। भगवान परिपूर्ण स्वभाव से भरपूर जिन, स्वयं परिपूर्ण परमात्मा है, वही भक्तजनों को – आत्मा की भक्ति करनेवाले जीवों को आत्मा का ध्यान करने योग्य है। उनका तीन लोक का नाथ आत्मा ही उन्हें पूज्य है। भगवान तीर्थंकर आदि पूज्य है, वे व्यवहार से हैं। आहा...हा... ! समझ में आया ? बहुत संक्षिप्त श्लोक! स्वयं कहते हैं कि मेरे लिए बनाये हैं, अन्त में ऐसा भी अन्दर लिखा है। है न ?

सो अप्पा णिरु वुत्तु – वह यह आत्मा ही निश्चय से कहलाता है.... अर्थात् क्या कहते हैं ? जिसे वास्तव में आत्मा कहा, वह जिन है, पूज्य है – ऐसा कहते हैं। जिसे वास्तव में निश्चय से वास्तविक आत्मा कहा, ऐसा। अकेला शुद्ध, बुद्ध, ज्ञानघन, आनन्दकन्द अकेला वर्तमान भले हो, त्रिकाल लम्बावे उसका कुछ नहीं। समझ में आया ? वर्तमान अकेला शुद्ध-बुद्ध घन अकेला अखण्डानन्द ध्रुव, उसे निश्चय से आत्मा कहा है। समझ में आया ? **सो अप्पा णिरु 'णिरु'** अर्थात् निश्चय से। **वुत्तु** निश्चय से तो उसे आत्मा कहा है। देह की क्रिया, वाणी की क्रिया तो जड़ है; पुण्य-पाप के परिणाम आस्रव; वर्तमान पर्याय की अल्पता, वह व्यवहार आत्मा है। वास्तविक आत्मा तो त्रिकाली बुद्ध चिद्घन ध्रुव है; अकेला सदृश चैतन्य का ध्रुव पिण्ड, वह वास्तविक आत्मा है। आहा...हा... ! समझ में आया ?

'णिच्छयणइ एमइ भणिउ' निश्चयनय ऐसा ही कहता है। देखो ! देखो !! **एमइ भणिउ** है न ? सत्य बात कहनेवाली वाणी और ज्ञान ऐसा कहते हैं। तीन लोक का नाथ पूज्य प्रभु तो तू है। आहा...हा... ! भगवान सर्वज्ञदेव और प्रतिमा, वह व्यवहार से पूज्य; यह तेरी पर्याय – एक समय का उघाड़, वह बहुमान देने योग्य व्यवहार से है। मोक्ष का मार्ग पूज्य है, वह भी व्यवहार से है – यहाँ तो ऐसा कहते हैं। पूर्ण शुद्ध भगवान चैतन्य का पिण्ड जहाँ नमने जैसा है, जहाँ झुकने जैसा है, जहाँ अन्तर सन्मुख होने जैसा

है – ऐसा जो भगवान पूर्णानन्द का नाथ प्रभु, वह तीन लोक का पूज्य स्वयं आत्मा अपने को पूज्य है। समझ में आया? आहा...हा...! ऐसा आत्मा! उसे ऐसा (लगता है कि) ऐसा आत्मा? ऐसा आत्मा? भाई! आत्मा ऐसा है। नव तत्त्व या सात तत्त्व में आत्मा ऐसा है। समझ में आया?

निश्चयनय ऐसा ही कहता है.... एहउ णिभंतु जाणि फिर भाषा देखी? निर्भ्रान्त – निःसन्देह.... सन्देह मत कर। यह कौन? हम भी ऐसे आत्मा? तीन लोक का भक्त पूज्य ऐसा आत्मा? भक्त तो भगवान को पूजे? अपने आत्मा को? इतना बड़ा यह तत्त्व! भ्रान्ति न कर। समझ में आया? आहा...हा...! सार... सार... सार... सार... मक्खन रखा है! उसे पूजते हैं, उसे ध्याते हैं, उसे मानते हैं। सौ इन्द्रों में भी यह प्रसिद्ध है कि आत्मा ही पूज्य है – ऐसा कहते हैं। समझ में आया? तब फिर वह व्यवहार आया इसलिए वह.... तुम्हारा व्यवहार खोटा.... फिर वापस ऐसा कहते हैं। वह व्यवहाररूप व्यवहार है। व्यवहार नहीं – ऐसा नहीं परन्तु व्यवहार को निश्चय से पूज्यपना स्वीकार कर दे तो यह बात मिथ्या है। बीच में ऐसा व्यवहार (आता है) भगवान को वन्दन, पूजा, नामस्मरण, पूजा-भक्ति, यह शुभराग होता है, व्यवहार होता है परन्तु जानने योग्य है; पूजने योग्य वास्तव में तो आत्मा है। आहा...हा...! समझ में आया? तब कहते हैं लो! बातें तो ऐसी करते हैं। ऐसा कितने ही कहते हैं।

कानजीस्वामी बात तो बहुत ऊँची करते हैं परन्तु फिर ऐसे मकान, मन्दिर और हाथी और यह सब कराते हैं, शोभायात्रा.... अरे! सुन तो सही, भाई! यह तो अजीव की पर्याय के काल में अजीव होता है। भक्तिवन्त का भाव शुभ होता है, उस काल में, वह जाननेयोग्य है। वास्तव में व्यवहार से आदरणीय कहा जाता है; निश्चय से आदर करने योग्य नहीं है। व्यवहार से तो आदर करने योग्य कहें न? भगवान के पैर पड़े, हे प्रभु! हे नाथ! हे देव! पूज्य हैं न! ऐसा कहते हैं। हे नाथ प्रभु! तीन लोक के नाथ वे व्यवहार से पूज्य हैं, जाननेयोग्य हैं, उसे निकाल दे तो वीतराग हो जाये और या मिथ्यादृष्टि हो जाये। समझ में आया? रतनलालजी! 'रंग लाग्यौ महावीर थारो रंग लाग्यौ' लोगों को कितना रस चढ़ जाता है, लो! ए... बाबूभाई! दो हाथ पकड़ कर ऐसे चारों ओर फिरते होते हैं।

आहा...हा... ! क्या है यह ? लोग उसमें महिमा मान लेते हैं। समझ में आया ? और करनेवाले को महिमा आ जाती है कि आहा...हा... ! हमने भी कुछ प्रभावना की। छगनभाई ! सब उड़ा दिया है।

एक व्यक्ति कहता था – टोडरमलजी ने तो उस्तरा लेकर सबका मुण्डन कर दिया। एक बात आयी थी। सजायो समझते हो उस्तरा, उस्तरा होता है न ? टोडरमलजी ने उस्तरा लेकर सबका मुण्डन कर दिया। ऐसा यहाँ निश्चय पूज्य में तो सबका मुण्डन कर दिया। तीन लोक का नाथ पूज्य ? तो कहते हैं व्यवहार से। आहा...हा... ! समवसरण में ऐसे इन्द्र भी पूजते हैं। प्रभु ! आहा...हा... ! व्यवहार के कथन ही ऐसे हैं। व्यवहार का ज्ञान, व्यवहार का विकल्प, परपदार्थ का लक्ष्य हो, होवे परन्तु वह कहीं वास्तविक आत्मा नहीं है और वह वास्तव में पूज्य नहीं है। ए...ई... ! अब तो मन्दिर-बन्दिर हो गया है। एक का बाकी रहा है न ?

मुमुक्षु – मलूकचन्दभाई करे उस दिन होगा ?

उत्तर – लो, यह तुम्हारे मामा करे न ? बाकी रहा है, वह करे तो हो – ऐसा है। पैसे इनके लड़के के पास पड़े हैं न ? आहा...हा... ! कठिन बात, भाई ! कहना कुछ मानना कुछ, फिर (ऐसा) कहते हैं।

भाई ! ऐसे विकल्प होते हैं। वह बन्ध का कारण है, आये बिना नहीं रहते। क्यों ? अबन्धस्वभावी आत्मा पूर्ण अबन्ध परिणाम को प्राप्त न करे, तब तक ऐसे भाव होते हैं, इसलिए व्यवहार है अवश्य; न माने तो मिथ्यादृष्टि हो जाता है और व्यवहार से पूज्य कहा उसे परमार्थ से पूज्य माने तो भी मिथ्यादृष्टि है। आहा...हा... ! समझ में आया ?

त्रिलोक पूज्य परमात्मा जिनेन्द्र हूँ, लो ! तीन लोक के प्राणी जिसे ध्याते हैं, पूजते हैं, वन्दन करते हैं, वही परमात्मा यह आत्मा है। मैं ही हूँ। मैं त्रिलोक पूज्य परमात्मा जिनेन्द्र हूँ। ओ...हो... ! ऐसा भ्रान्तिरहित निश्चय से जानना चाहिए। अरे... ! परन्तु मैं भगवान ? मैं भगवान ? आहा...हा... ! मैं भगवान... भाईसाहब ! ऐसा वस्तुस्वरूप है, कहते हैं। समझ में आया ? आहा...हा... ! ऐसे स्वरूप का शुद्ध भगवान आत्मा तीन लोक में पूज्य पुरुषों को भी पूज्य है। समझ में आया ? गणधर आदि सन्त जो पूज्य हैं, उन्हें भी पूज्य आत्मा है।

आहा...हा...! समझ में आया? नमन करने योग्य जो मुनि आदि हैं, उन्हें भी नमन करने योग्य तो यह आत्मा है। ऐसा परमात्मा पूर्ण प्रभु, तीन लोक में जिसके साथ कोई तुलना की जा सके ऐसा नहीं। अद्वैत तत्त्व अपना भगवान है, वह पूज्य है, वह वन्दनीय है, मानने योग्य है, आदर करने योग्य है, ध्यान करने योग्य है। आहा...हा...!

☆ ★ ☆

मिथ्यादृष्टि के व्रतादि मोक्षमार्ग नहीं

वय-तव-संजम-मूलगुण, मूढहँ मोक्ख ण वुत्तु।
जाव ण जाणइ इक्क पर, सुद्धउ भाउ पवित्तु॥२९॥

जब तक एक न जानता, परम पुनीत स्वभाव।
व्रत-तप सब अज्ञानी के, शिव हेतु न कहाय॥ २९॥

अन्वयार्थ – (जाव ण इक्क पर सुद्धउ पवित्तु भाउ ण जाणइ) जब तक एक परम शुद्ध व पवित्र भाव का अनुभव नहीं होता। **(मूढह वयतवसंजम मूलगुण मोक्ख णिवुत्तु)** तब तक मिथ्यादृष्टि अज्ञानी जीव के द्वारा किये गये व्रत, तप, संयम व मूलगुण पालन को मोक्ष का उपाय नहीं कहा जा सकता।

☆ ★ ☆

२९। **मिथ्यादृष्टि के व्रतादि मोक्षमार्ग नहीं।** ऐसे आत्मा का बहुमान श्रद्धा, ज्ञान, भान बिना भगवानस्वरूप से परमात्मा स्वयं है, उसकी अन्तर में निर्विकल्प सम्यग्दर्शन बिना अर्थात् पूर्णानन्द का नाथ भगवान स्वयं अपने आदर के अतिरिक्त जितने यह व्रत, नियम, विकल्प, तपस्या, पूजा, भक्ति, दान करे, यात्रायें करे, वे सब उसके धर्म के लिए नहीं हैं – मोक्षमार्ग के लिए नहीं हैं। समझ में आया? अन्य लोग कहते हैं, एक बार सम्मेदशिखर की यात्रा करे तो.... 'एक बार वन्दे जो कोई'..... लाख बार वन्दन कर सम्मेदशिखर की (तो भी) एक भव नहीं घटता, ले! ऐसा यहाँ कहते हैं। ए बाबूभाई! आहा...हा...! तीन लोक के नाथ साक्षात् परमेश्वर को करोड़ बार वन्दन करे तो भी एक भव नहीं घटता, क्योंकि वे परद्रव्य हैं। परद्रव्य के लक्ष्य से उत्पन्न होता हुआ राग ही उत्पन्न

होता है। आहा...हा...! समझ में आया? जिसकी आत्मदृष्टि नहीं और जिसने उस विकल्प में ही लाभ माना है; जिसने विकार की क्रियाएँ होती है, उनमें लाभ माना है, जिसमें.... लो! वे फिर ऐसा कहते हैं, हमें तो उपदेश देना, उसमें निर्जरा होती है। तेरापन्थी.... आहा...हा...! अरे! कहाँ भूले, कहाँ भटके? हमें दूसरों को उपदेश देना, उसमें लाभ होता है, निर्जरा होती है। आहा...हा...! समझ में आया?

यहाँ तो भगवान अखण्डानन्द का नाथ प्रभु, उसके आश्रय के अतिरिक्त कोई भी विकल्प उत्पन्न हो, वह मोक्ष के मार्ग की कला में प्रवेश नहीं कर सकता। कहो, समझ में आया? निर्दोष आहार दे और खाये तो दोनों को निर्जरा (होती है)। दशवैकालिक की गाथा है, पाँचवें अध्ययन की। यह बारम्बार बोलते.... निर्दोष दाता, निर्दोष आहार-पानी देनेवाले मुनियों को दाता दुर्लभ है, और निर्दोष लेनेवाले दुर्लभ हैं। जीमनेवाले, निर्दोष आहार-पानी जीमनेवाले दुर्लभ हैं – ऐसा उसमें पाठ है। वह पाँचवाँ सूत्र है, उसकी यह अन्तिम कड़ी है। भगवानभाई! यहाँ कहते हैं; हराम पर को निर्दोष आहार-पानी देने से संवर-निर्जरा होता हो तो.... ए.... हमारे तो हीराजी महाराज तो जहाँ-जहाँ वहाँ यही बोलते, हाँ! गाँव में.... कोई उनके लिए आहार नहीं बनावे, उसके लिए यही बात करते थे। आहा...हा...!

कहते हैं, जिसकी दृष्टि इस पर के ऊपर है, इस पर के आश्रय में से किंचित् लाभ मानता है, ऐसे मिथ्यादृष्टि के व्रतादि जो हैं वे निर्जरा में नहीं है। निर्जरा में मोक्षमार्ग अर्थात् संवर-निर्जरा में नहीं है; बन्धमार्ग में है। यह विशेष कहेंगे....

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)